Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी रचनाओं का परिचय

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी रचनाओं का परिचय

विगत अध्याय में अखा की रचनाओं की संदिग्धता एवं असंदिग्धता, उनकी संख्या और उनके क्रम पर विचार कर लेने भर के पश्चात् प्रस्तुत अध्याय में उनकी हिन्दी कृतियों का परिचय प्रस्तुत किया है। "अमृतकला रमेणी" तथा कुछ "पद" अखा की ऐसी कृतियाँ है जो अभी तक अप्रकाशित है तथा "जकड़ी", "वसंत के पद", "संतप्रिया" तथा "ब्रह्मलीला" ऐसी रचनायें हैं जिनका अखा के अध्येताओं ने कहीं भी अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है। अत: यहाँ अखा की प्रकाशित और अप्रकाशित सभी हिन्दी कृतियों पर प्रथम बार गवेषणात्मक दृष्टिकोण से विचार करने का प्रयत्न किया है।

अमृतकला रमेणी और एकलक्ष रमणी

"अमृतकला रमेणी" फार्बस गुजराती साहित्य सभा की हस्तलिखित पोथी संख्या ३४६ में उपलब्ध है और "एकलक्ष रमणी" अप्रसिद्ध अक्षयवाणी में "प्रकाशित है[1]। दोनों कृतियों में कवि के नाम की छाप स्पष्ट है[2]। दोनों

---

१. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी, संपा० सागर महाराज, सं० १९८८, १७७ से १८०

२. अ. अमृतकला आनंदघन, जा घट उपजी होय

देखी चाखी केहे अखो, अमृतकला सो होय, २६ ।। फा०गु०सा०स०ह०लि०पो०

आ. चये दृष्टांत सबही दीये। अचये लक्ष नाराल

अखा अचये लक्षको ग्रहणेवाला निहाल ।। २६ ।। अक्षयरस-

—वाणी विभाग पृ०२

में २७-२७ साखियाँ है । दोनों में प्रति श्लोक के पूर्ण होने पर पहले श्लोक के चरण की आवृत्ति कर गायन की एक-सी व्यवस्था की गई है । दोनों की भाषा एक-सी खड़ी बोली हिन्दी है और दोनों में प्रतिपाद्य को एक लघु इकाई [Unit] में अभिव्यक्त करने में लेखक को सफलता मिली है । फिर भी विषय वस्तु की दृष्टि से दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र हैं ।

" अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा " नामक अपने अप्रकाशित शोध-ग्रंथ में डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी " एकलक्ष रमणी " का परिचय देते हुए " रमणी " शब्द का अर्थ " सुरतानारी " ग्रहण कर प्रस्तुत कृति के शीर्षक का अर्थ " एक-लक्षवाली सुरता नारी " करते हैं । किंतु दोनों रचनाओं का परीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी द्वारा गृहीत अर्थ तथ्य से दूर है ।

" एकलक्ष रमणी " में कवि ने समस्त दृश्यमान विश्व में परिव्याप्त पूर्णब्रह्म की सत्ता के प्रति अपने एकलक्षमत् चित्त का रमण ही अभिव्यक्त किया है । " अमृतकला रमणी " में कवि ने अवाच्य, अव्यय, अरूप एवं आनंदघन परब्रह्म की सहज सूझ को " अमृत कला " के नाम से अभिहित किया है । इस प्रकार विषयवस्तु की दृष्टि से दोनों कृतियाँ " सुरतानारीवाले " तात्पर्य को न ग्रहण करके " रमणी " लोकगीतों के एक प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

कबीर की रमैनियों के शिल्प विधान का विवेचन करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपने " संत-काव्य " में बताया है कि "........इन रमैनियों की रचना वर्णमाला के बावन अक्षरों को लेकर की गई है।[1] ऐसी रमैनियाँ- " बावन अक्षरी " अखा में नहीं मिलने का कारण यह अनुमित किया जा सकता है कि अखा ने परिब्रह्म को " बावन अक्षरों के बाहर[2] " का अर्थात् वर्णनातीत बताया है। जो स्वयं अक्षरों अर्थात वाणी की समस्त सृष्टि से पर है उसका बावन अक्षरों में वर्णन कैसे किया जाय। कवि ने बावन अक्षरों के वर्णन के प्रति स्थान-स्थान पर जो विरोध व्यक्त किया है उससे प्रतीत होता है कि ~~कवि~~ अन्य कवियों द्वारा रचित " बावनियाँ " एवं उन्हे पढ़नेवाले जड़ कर्मवादियों के प्रति अखा के अंतर में तिरस्कार भी हो।

---

१. संत काव्य पृ० ३३

अ. कहैत अखो जहां नहीं स्वर व्यंजन सो बावन बाह्य को हाथ न आयो।

-।।१०३।। सं०प्रि०

आ. बावन बाह्य बसे मुज प्यारा।

मन वाणी का तहां नहीं चारा

।। जकड़ी-४।

इ. बावननो सघळो विस्तार, अखा त्रेपनमो जाण्ये पार

।।२४७।। छप्पा

२. संत काव्य, पृ०३१-३५

इसी " संत काव्य " में चतुर्वेदीजी ने कबीर की रमैनियों के " छंद-विधान " पर विचार करते हुए उन्हें " दोहा-चौपाईयों " में रचित हुआ बताया हैं। किंतु अखा की ये दोनों कृतियाँ साखियों में है।

अखा के पूर्ववर्ती गुजरात के ज्ञान मार्गी कवियों में से किसी भी संत द्वारा रचित " रमैनियों " नहि मिली है। अत: अखा को इस लोक-गीत के काव्य प्रकार का प्रथम रचयिता कहा जा सकता है।

एकलक्ष रमणी और साखियों का एकसाल अंग

एकलक्ष रमणी की जो मूल हस्तलिखित पोथी संख्या ५ और ७ डॉ॰ योगीन्द्र त्रिपाठी के पास सुरक्षित है उसमें और उसके प्रकाशित रूपमें कोई अंतर नहीं है परंतु " श्री अखाजीनी साखीओ[१] " में जो " एकसाल अंग " है उसके प्रारंभ की दश साखियाँ और एकलक्ष रमणी की प्रारंभिक दश साखियों में

---

१. श्री अखाजीनी साखीओ : संपा० केशवलाल ठक्कर
पृ॰ १७७ से १८०

कहीं कहीं पाठभेद है। किंतु दोनों का परीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कृति स्वयं अखा ने पहले साखियों के एकसाल अंग के रूप में लिखी है और बाद में थोड़े शाब्दिक हेर-फेर एवं कुछ विस्तार के साथ नयी और एक स्वतंत्र लघु कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। " एकसाल अंग " में केवल १० साखियाँ

---

१. एकलक्ष रमणी

जगत कहो जगदीश कहो, माया कहो कोई काल
पूरण ब्रह्म गाईजे हो द्वैत नहीं कोई काल ।। १ ।। पूरण

एकसाल अंग

जगत कहो जगदीश कहो माया कहो कोई काल
अखा मते विज्ञान के सब चिद्रुप एक साल ।। १ ।।

एकलक्ष रमणी

सत, त्रेता द्वापर, कलि चारू न्यारे चाल
सदा मते विज्ञान के राम रमत एक साल ।। २ ।।

एकसाल अंग

सत त्रेता द्वापर कलि, चारू न्यारे चाल
अखा मते विज्ञान के राम रमत एक साल ।। २ ।।

हैं जबकि " एक लक्ष रमणी " में २६ साखियाँ है। एक लक्ष रमणी की अंतिम साखियों का परीक्षण[1] करने से भी प्रस्तुत कृति का स्वतंत्र कृतित्व सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त सर्व प्रथम जिस " अप्रसिद्ध अक्षयवाणी " में प्रस्तुत कृति प्रकाशित हुई है। उसके अंत[2] में और डॉ० त्रिपाठी के पास से उपलब्ध ह०लि०पो० में इस रचना के पूर्ण होने के बाद जो पंक्ति मिलती है उनसे भी उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि होती है।[3]

---

१. दृष्ट दृष्टा दर्शन नहीं त्यांहां चक्रे चाल।
स्व संवेद्य भी कहन को ऐसा सा एक साल ।। २६ ।।
चये दृष्टांत सब ही दिये अचये लक्ष अराल
अखा अचये लक्षको ग्रहणेवाला निहाल ।। २७ ।।

२. अ. ईति श्री अखा कृत एक लक्ष रमणी संपूर्णमस्तु
।। अप्रसिद्ध अक्षयवाणी, पृ०७५

आ. ईति श्री अखा कृत एक लक्ष रमणी संपूरण मस्तु।
समाप्तम ।। ह०लि०पो० ७

३. अखा ने अपने " पंचीकरण " की भी ऐसे ही पहले छप्पा के एक अंग के रूप में और बाद में स्वतंत्र कृति के रूप में रचना की है।
-- दृष्टव्य -- अखो एक अध्ययन पृ० १७४

कुंडलियाँ

अखा के कुंडलिया छंद प्रथम वार " बृहद् काव्य दोहन " [सं० १९४७ वि.[1] में और तत्पश्चात् " अप्रसिद्ध अक्षयवाणी " [सं० १९८८ वि०] में प्रकाशित[2] ~~में प्रकाशित~~ हुए । इन दोनों ग्रंथों में कुंडलिया की आधारभूत ह०लि०पोथियों का उल्लेख नहीं है किंतु उक्त " बृहद् काव्य दोहन " में प्रकाशित कुंडलियों का फार्बस गुजराती साहित्य सभा की ह०लि०पो० संख्या २६७ के साथ मिलान करने से विदित होता है कि प्रस्तुत ग्रंथ में प्रकाशित कुंडलियों की आधारभूत पोथी यही है । दोनों में २३ कुंडलियां है और दोनों में उनका क्रम भी एक ही है ।

संभवत प्रकाशित दोहों में " कृपा " का " कृपा " " आतमराम " का "आत्माराम " " निरमल " का " निर्मल " , " तुरयातीत " को " तुर्यातीत " करके पुरानी भाषा को संशोधित करने का प्रयत्न किया गया है ।

इन तेईस कुंडलियों में से पहले दूसरे और तेईसवें को निम्नलिखित तथ्यों के प्रकाश में प्रक्षिप्त कहा जा सकता है[3] -

---

१. बृहद् काव्य दोहन - भाग ८ संपा० इच्छाराम सूर्यराम देसाई

२. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी, पृ०१६५ से १७३

३. संत की सेन में तेज है साहर जलहल पूर
उनके मीन बताये देउ, सुन हो संत चतुर ।
सुन हो संत चतुर डमरु घर उज्वल शांमा
जनक शनक शुक व्यास, वसीष्ट दत्त श्री रांमा
ब्रह्मानंद उन दधीचीन के मन कीया चक्चुर
संत की सेन में तेज है साहर जलहल पूर ।। १।।

[१] इनमें अखा की छाप न होकर " ब्रह्मानंद " नामक किसी कवि की छाप है।

[२] अखा की-सी भाषा शैली नहीं है।

[३] शेष कुंडलियों से इन में रचना तंत्र का अंतर है।

इन कुंडलियों में प्रारंभ की दो पंक्तियाँ दोहे की और शेष चार पंक्तियाँ रोला की कुल छहपंक्तियाँ है। तथा दोहे के अंतिम चरण की रोला के प्रथम चरण में पुनरावृत्ति कर पूरे छंद में पिंगल शास्त्र के अनुसार है जब कि शेष छंदों का पिंगल शास्त्र के नियमों के आधार पर परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि ये न तो शुद्ध कुंडलिया है और न तो शुद्ध छप्पय। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कुंडलिया में दोहा की दो और रोला की चार पंक्तियाँ मिलाकर कुल छह पंक्तियाँ होती हैं। दोहा की द्वितीय पंक्ति के अंतिम चरण की रोला की प्रथम पंक्ति के प्रथम चरण में आवृत्ति होती है और दोहा के प्रथम चरण के शब्दों का रोला की अंतिम पंक्ति के अंतिम चरण में पुनरावर्तन होता है। किंतु अखा के कुंडलियों में इन नियमों का निर्वाह नहीं है। छप्पय की कुल छह पंक्तियों में से चार पंक्तियाँ रोला की और अंतिम दो पंक्तियाँ उल्लाला की होती है। परंतु इन कुंडलियों में तो सात-सात पंक्तियाँ है। यद्यपि ७ वीं पंक्ति और न होकर प्रथम पंक्ति की हीशब्दशः पुनरावृत्ति है किंतु उसकी रचना कुछ इस कदर की गई है कि उसका संबंध छट्ठीं पंक्ति के साथ अनिवार्य रूपसे जोड़ना पड़ता है। इस ७ वीं

पंक्ति को हटा लेने पर पूरे छंद का लय नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के - सात पंक्तियोंवाले एवं न तो शुद्ध कुंडलिया और न शुद्ध छप्पय छंद की रचना करने की परंपरा हिंदी साहित्य के संत कवियों में पाई जाती है। " भक्त-माल " के रचयिता " नाभादास " के गुरु " अग्रदासजी " ने ऐसे छंदों की रचना की है। अग्रदासजी के इन छंदों के " संपादक " ने इन्हें " कुंडलिया-छप्पय " नाम दिया है।[१] प्रतीत होता है कि अखा ने अपने कुंडलियों की रचना में उत्तर भारत के संतों की इस परिपाटी का अनुसरण किया है। स्पष्टता की

---

१. श्री अग्र ग्रंथावली [प्रथम खंड]

संपादक श्री १०८ गोस्वामीराजकिशोरीवर शरणजी,

अयोध्या, सन् १९३५

पृ०५

दृष्टि से दोनों की रचनाओं से बानगी रूप में कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं[१]

---

१. <u>अग्रदास</u>

मार बफाती खीचरी, ईंधर आज न काल,
ईंधर आज न काल, धौर हरख घूवां कैसी ।
तन तुषार को सार, ताजि नर चिर करि वैसो ।
सपने सोजो पाय, कृपणाती कर धन जोर्यो ।
पुनी जागेते प्रात, कहां काको ऋण तोर्यो
ज्यों पीसंती चाकिया, अग्र सो उत्तम चाल
मार बफाती खीचरी, ईंधर आज न काल ।

– श्री अग्र ग्रंथावली, पृ० ५

<u>अखा</u>

जीव अपनो अज्ञान, मान बेहेत है मिथ्या
मिथ्या बहत है मान, कान गुरु ज्ञान न लायको ।
भयो न मूल उद्योत, ज्योति आत्मा नहीं जायगो ?
भम्यो भवून सो तीन ? कीनो नहीं कबहुं बिचारा ।
मैं सो कौन ? कवन सो देह है पिंड चलावन हारा ?
बिन वस्तु विचार अखा, दर्शन बहु पंथा
जीव अपनो अज्ञान, मान बेहेत है मिथ्या ।। ४।।

– अखायरस, पृ० ३०

संख्या

" अक्षयरस " में प्रकाशित कुंडलियों की आधारभूत ह०लि०पो०संख्या ७ में जहाँ कुंडलियाँ का प्रारंभ और अंत होता है वहाँ किसी प्रकार का मंगलाचरणात्मक एवं समाप्तिसूचक संकेत नहीं होने के कारण यह स्पष्ट नहीं होता कि कुंडलियों की वास्तविक संख्या कितनी है। " अक्षयरस " के २५ कुंडलियों में से ७, १५, १६, १७, २२ और २३ संख्यांक कुंडलिया " बृहद् काव्य दोहन " में नहीं है। इन सभी में अखा के नाम की छाप स्पष्ट है। इनमें से १४, १५, और १७ संख्यांक कुंडलिया पूर्णतया गुजराती भाषा में होनेके कारण उन्हें निकाल लेने पर अखा के प्रकाशित हिंदी कुंडलियों की वास्तविक संख्या २२ की होती है।

वर्ण्य विषय

अखा के अंतिम कुंडलिया की " ज्ञान भक्ति अरु जोग के मारग तीन अरु तीन लक्ष " पंक्ति संत कवयित्री सहजोबाई की " तिथि " की पंक्ति " ज्ञान भक्ति और जोगकु तिथि में करूं बखान[१] " का स्मरण दिलाती है। दोनों की इन कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि संतों ने प्राय: ज्ञान, भक्ति और योग - तीनों का समन्वयात्मक वर्णन किया है। अखा ने इन तीनों के भिन्न-भिन्न मार्गों एवं लक्ष्यों का वर्णन करने के अतिरिक्त तत्वचर्चा, ज्ञानी गुरु, आत्म तत्व, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मज्ञान, एन [परम]

---

१. संत काव्य : भूमिका पृ० ३५

पद, अंतराभिमुखता, तीव्र विरह, वैराग्य, स्वानुभव आदि आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों का सूत्रात्मक निरूपण कर षट्दर्शन, पंथ, माया, अज्ञान एवं देहभाव के त्याग पर बल दिया है। इन विषयों के वर्णन में कवि ने विशेषकर "जहर मुहरा"[१], "वैद्य शलाका"[२], "पोत भात"[३], "मुकुर-प्रतिबिंब"[४], "खस-खस"[५], "शुद्ध पारा"[६] आदि के दृष्टांतों एवं उदाहरणों के द्वारा अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

झूलना

अखा के १०६ "झूलना" सर्व प्रथम "अप्रसिद्ध अक्षयवाणी" में सं० १९६८ में प्रकाशित हुए। इन झूलना में वर्णित वेदांत और सूफी इश्क की एकता की ओर निर्देश कर सागर महाराज ने इनकी भाषा को उर्दू-हिन्दी- पंजाबी मिश्रित बताया है।[७] बनारस में अपना विरोध होने पर

---

१. दृष्टव्य : अक्षय रस : कुंडलिया - २ पृ० २

२. वही० कुंडलिया - ४ पृ०४

३. अक्षयरस : कुंडलिया ११ पृ० ५

४. वही० कुंडलिया १३ पृ० ६

५. वही० कुंडलिया १७ पृ० ७

६. वही० कुंडलिया २१ पृ० ८

७. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी: टीका विभाग, पृ० २६६

अखा का पंजाब की ओर जाने का उल्लेख करनेवाली आख्यायिका[1] के द्वारा झूलना की इस "सूफी शाही इबारत" और उसकी भाषा के "पंजाबीपन" का रहस्योद्घाटन हो जाता है।

हालाँकि इनमें किसी एक विषय का क्रमबद्धरूप से निरूपण नहीं है, फिर भी प्रेम और विरह की महत्ता, अहंभाव का अनिष्ट और बाह्याडंबर के मिथ्यात्व के साथ-साथ वेदांत के अद्वैत सिद्धांत को सूफी परिभाषा में परिवर्तित कर "अद्वैत ब्रह्म" और "वासिले इश्क" के स्वानुभव की एकरूपता[2] की स्थापना की गई है।

अज्ञानी जीव के लिए "नली पर बद्ध सुग्गा[3], परब्रह्म रस सागर में मिले रहने की दशा की सूचना के लिए "दरियाव की मछली[4], देह की क्षणभंगुरता के लिए "आतशबाजी[5], प्रियतम परब्रह्म में ही समरस रहने पर जगत की जंजालरहितता के लिए "माता के उदर में गर्भ[6] "शरीर मरण नहीं पर मनोमारण महत्वपूर्ण है यह बताने के लिए "दर की अपेक्षा सांप पर

---

१. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी : टीका विभाग, पृ० २७०

२. विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य: प्रस्तुत प्रबंध का छट्ठा अध्याय।

३. ~~कुंडलिया~~ अक्षयरस : कुंडलिया १२, पृ० ५८

४. वही० कुंडलिया ३०, पृ०६३

५. वही, कुंडलिया २१, पृ०६०

६. वही, कुंडलिया ३६, पृ०६४

वार करने की आवश्यकता[१], एक-मात्र परब्रह्म की ही सत्ता सूचित करनेके लिए "कांच के महल पर सूर्य प्रकाश"[२] के आदि दृष्टांतों की नियोजनाओं के द्वारा कवि ने अपने कथितव्य को आस्वाद्य बनाने का प्रयत्न किया है।

अखा के पद

अखा के पद दो रूपों में उपलब्ध है- [१] अप्रकाशित और [२] प्रकाशित। प्रस्तुत प्रबंध के लेखक को अहमदाबाद एवं बम्बई से तथा डॉ॰ मंजुलाल मजमुंदार, बड़ौदा एवं श्री माईलालभाई जोशी, [गाँव करणोट, ता॰ डभोई] के पास से कुल मिलाकर ३० अप्रकाशित पद उपलब्ध हुए हैं जिनमें से १० पद पूरे एवं शेष पदों की प्रथम पंक्ति की सूचि आवश्यक विवरण के साथ परिशिष्ट में दी गई है। यहाँ अखा के पदों की संख्या, उनके वर्गीकरण एवं उनके रचना-तंत्र पर विचार किया जायेगा।

~~अखा~~ पदों की संख्या

"अखानी वाणी" में प्रकाशित गुजराती पदों के साथ यत्र तत्र छपे गये अखा के २६ हिन्दी पदों में से केवल १६ पद "अक्षयरस" में संकलित किये गये हैं, शेष पदों को छोड़ देने और "अखेगीता" में उपलब्ध[३] अन्य ४ पद नहीं लेने के संबंध में कोई स्पष्टता नहीं की गई है। "अक्षयरस" के "भजन" विभाग

---

१. अक्षयरस : कुंडलिया ५२, पृ० ६८

२. वही० कुंडलिया ८५, पृ० ७७

३. दृष्टव्य: अखेगीता : संपा० प्रो०भूपेन्द्र त्रिवेदी सन् १९५८

पृ० २२ पद-४, पृ० २७ पद- ५, पृ०३८ पद-७, पृ०४६-५० पद-

में छपे भजन ३-४ गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी की ह०लि०पो० संख्या ११६ में " पद ७२ जयजयवंती " और " ७६ राग " होरी " के अंतर्गत मिलते हैं। पांचवाँ भजन गु०व०सो० की ह०लि०पो० संख्या ७४० में " ~~अथान्य~~ अथ पद लिष्यते ।। राग वसंत ।। " के अंतर्गत द्वितीय पद के रूप में छपा है। यह फाग वर्णन का पद है। फाग वर्णन के दो पद अखायरस में ११ वें और १२ वें भजन के रूप में छापे गये हैं। " अखायरस " के भजन विभाग में से इन पांचों पदों के साथ सिंघ से प्रकाशित " भजन विलास " में से एक पद[१] निकाल कर इन पदों में जोड़ने से अखा के उपलब्ध और प्रकाशित हिन्दी पदों की संख्या ३३ की होगी। परिशिष्ट में सूचित ३० अप्रकाशित पदों को इन ३३ पदों में मिलाने से अखा के अप्रकाशित प्रकाशित सभी उपलब्ध हिन्दी पदों की कुल संख्या " ६३ " की होती है।

पदों का वर्गिकरण

विषय वस्तु की दृष्टि से इन पदों को दो प्रधान भागों में निर्देशित किया जा सकता है - [१] भक्ति और ज्ञानपरक पद तथा [२] फाग वर्णन के पद। अखा के भक्ति और ज्ञानपरक पदों का विषय वस्तु की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत प्रबंध के पांचवे, छट्ठे, सातवें और आठवें अध्यायों में सम्मिलित किया गया है। अत: यहाँ अंतस्तत्त्व की दृष्टि से अखा के पदों पर संक्षेप में विचार किया जायेगा। इस दृष्टि से विचार करने पर अनुभव होता है कि

---

१. भजन विलास, पृ० १०८

इनमें उत्तम काव्य के विधायक उर्मि, विचार एवं कल्पना- तीनों तत्वों का सुंदर समन्वय हुआ है। इसके अतिरिक्त आत्मनिष्ठ वैयक्तिकता की आविष्कृति, अभिव्यक्ति की कलापूर्ण संक्षिप्ति एवं गेयता की माधुरी की दृष्टि से अखा के कई पद महत्वपूर्ण है। यहाँ इनमें से तीन पद[१] देखे जा सकते हैं। पहले में

---

१. अ. ज्ञान घटा चड आई, अचानक ज्ञान घटा चड़ आई ।

अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीच रेलाई । अचा०

दादुर मोर शबुद संतन के, ताकी शून्य मीठाई । अचा०

चहुं दिश चित चमकत आपनपों, दामिनी-सी दमकाई । अचा०

घोर घोर गरजत घन घेहेरो, सतगुरु सेन बताई । अचा०

उमगी उमगी आवत है निशदिन, पूरब दिशा जनाई । अचा०

गयो ग्रीष्म अंकुर उगि आये, हरिहर की हरियाई । अचा०

शुक शनकादिक शेष सहराये, सोई अखा पद पाई । अचा०

आ. आनंद अद्भुत आया अब मोहि, आनंद अद्भुत आया,

किया कराया कछु भी नाहीं, सेजे पियाजीकुं पाया ।। टेक ।।

देश न छोडया वेश न छोडया, ना छोडया संसारा,

सूता नर निद्रासे जाग्या, फीट गया स्वप्ना सारा ।।अब०

कृपानाल अंतर से छूटी, गोला ज्ञान मिलाया,

आड़ अटक फैल सब निकल्या, जड़ से अज्ञान उडाया ।।अब०

भला कहे कोई बुरा कहे कोई, अपनि मति अनुसारा,

खारा मोला लोह पारस परसे सोन भया अखा सोनारा ।।अब०

" ज्ञानामूति " के लिए " वर्षा का सुंदर सांग-रूपक है। दूसरे में " पारस को स्पर्श कर " सोने " होने पर अद्भुत आनंद की अकथ्य कहानी " है और तीसरे में " वास्तव में हरि को हेरने के लिए जाने पर हरि द्वारा हेरे जाने की कवि की स्थिति " का वर्णन है।

---

६. हरिकुं हेरतां रे सखी में रे हेराणी,
सरिता लीन् अली रे, सिंधुकु वा हुलर पाणी ।। हरिकु०
ज्युं घनसार पवन को पावत, ताको सूरज समाणी,
ऐसो मगन भयो मन मेरो, कोई बुझे गुरुगम ज्ञानी ।। हरिकु०
ज्युं अंधेरो अर्क देखतां, गई नित निज देह बिलानी ;
प्राप्त वस्तु अखा कहे ऐसी संगत भयी हे प्रानी।। हरिकु०

वसंत के पद

पाद टिप्पणी में उल्लिखित अखा के छह[1] पदों को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर " वसंत के पद " कहा जा सकता है:

१. गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी के ग्रंथभंडार की ह०लि०पो० सं० ७४० में सुरक्षित इन पदों के उपर " वसंत " राग का स्पष्ट उल्लेख है।

२. पदों में वसंत,[2] फाग,[3] होरी,[4] आदि शबदों का व्यवहार हुआ है।

३. पदों में आद्यंत वसंतोत्सव का ही वर्णन है।

एक स्थान पर वसंतोत्सव के इन पदों को स्वयं अखा ने " धमार " [धुआरय] भी कहा है।[5]

---

१. अ. आली ! सब सखीयन में कवन श्याम.... अखो एक अध्ययन पृ० २५५

आ. आली ! अबको फाग मेरो मन सहरात - अक्षयरस भजन-५. पृ० १०७

इ. आली ! सघनकुंजमें खेलन जाए - गु०व०सो०ह०लि०पो० संख्या ७४०

ई. अक्षयरस, भजन :११ पृ० ११५

उ. हे हजी हाजहजूर - वही भजन १२ पृ० ११५

ऊ. खेलो खेल आप में हो - वही धुआसा ३ पृ० ११

२. बारो मास वसंत अखो कहे- अक्षयरस पृ०१०

३. आली अबको फाग मेरो मन सहरात । वही० पृ० १०७

४. दृष्टा दृष्ट मध्ये ही मनोहर, खेलत है हरि फाग

होहो होरी कहो चिद्शक्ति, उड़त शबद पराग ।। वही० पृ०११

५. अंध अंध आतम बिन जाने, देखी गाओ धुआर्यां।। वही० पृ०१०

परंपरा और प्रयोग

अखा के पूर्ववर्ती किसी गुजराती जैनेतर संत कवि द्वारा रचित " निर्गुण ब्रह्म की फाग लीला " का गान करनेवाले पद नहीं मिलने के कारण अखा को निर्गुण ब्रह्म के फाग का वर्णन करनेवाला प्रथम गुजराती जैनेतर संत कवि कहा जा सकता है ।

गुजरात के जैनेतर ज्ञानमार्गी कवियों में इन पदों का पाया जाना एतद्‌विषयक जैन एवं वैष्णवी भक्ति पदों के प्रभाव का परिणाम हो सकता है । अखा ने जो फाग के पद लिखे है उसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वे स्वयं अपने पूर्वाश्रम में वैष्णव थे और वैष्णव मंदिरों के पूजन- भजन विधि से परिचित भी थे । अखा के समय प्रचलित " फागु काव्य " लिखने की परंपराओं को सुकरता की दृष्टि से [अ] गुजराती और [आ] हिन्दी के रुप में निर्दिष्ट किया जा सकता है । " गुजराती " परंपरा से मतलब है गुजरात में प्रवर्तित जैनों एवं वैष्णव कवियों द्वारा प्रवर्तित फागु काव्य परंपरा । अखा के पूर्ववर्ती जैनेतर वैष्णव कवियों में नरसिंह महेता द्वारा रचित " वसंत " ना पद[१] और अज्ञात कवि कृत " वसंत विलास[२] " [सन् १४५२ ई०] को तथा जैन कवियों में राजशेखरसूरि कृत " नेमिनाथ फागु " [सन् १३४६ ई०] और " जंबुस्वामी फागु[३] " [सन् १३७४ ई०] का उल्लेख किया जा

१, नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह सं० १६६६ पृ० २२१ से २६३

२, गुजराती साहित्य [मध्य] : पृ० ६६ -७०

३, गुजराती साहित्य [मध्य] : पृ० ६६ – ७०

सकता है । " हिन्दी " से मतलब है उत्तर भारत के कबीर द्वारा रचित एतद्-विषायक पदों की परंपरा । अखा के पदों का संबंध कबीर के एतद्विषायक पदों के साथ जोड़ा जा सकता है क्योंकि दोनों ने एक से बड़े विराट रूपकों की योजना कर निर्गुण ब्रह्म के होरी खेलने की भव्य कल्पनायें की हैं ।[१]

विषाय वस्तु

रस की दृष्टि से वसंत वर्णन के पदों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है [१] शृंगार रस-परक[२] एवं [२] शांत रस-परक । शृंगार की संयोगावस्था एवं वियोगावस्था की विभिन्न दशाओं का वर्णन करनेवाले पद " शृंगार रस के अंतर्गत गृहीत किये गये हैं जबकि निर्गुण ब्रह्म के साथ फाग-खेल का वर्णन करनेवाले पदों को " शांत रस " के अंतर्गत । " आली " संबोधन से प्रारंभ होनेवाले " शृंगार रस "[३] के तीन पदों में प्रिया के प्रियतम [आत्मा के परमात्मा] के साथ " भ्ककम भ्कोल " करने के वर्णन द्वारा अंततोगत्वा " रस रूप " परब्रह्म की सर्वव्यापकता की स्थापना की है ।

---

१. दृष्टव्य: कबीर :अ: संत बानी संग्रह भा० २ बेलविडियर प्रेस, पटना. सन् १९५५, पृ० १४, २५

:आ: कबीर : हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ०२४१-२४२

अखा : ।अ। अक्षयरस पृ० १०४, ३

।आ। अखो- एक अध्ययन पृ०२५५

२. " वसंत के पद " की फुटनोट में उल्लिखित प्रारंभ के अ, आ, इ. ।

३. " वसंत के पद " की फुटनोट में उल्लिखित ई, उ, ऊ.

अखा " राधा " स्वरूप है जबकि परब्रह्म " कृष्ण " स्वरूप । इन तीनों पदों में प्रिया प्रियतम के फाग खेलने का ही वर्णन है । लज्जा, स्वेद, राग, असमंजस, हर्ष, कांति, संकोच, स्मृति आदि अनुभावों एवं संचारी भावों का अनुभव करनेवाली " नवल किशोरी " के रूप में कवि ने अपने " प्रीतम " के अंक में बद्ध होकर रसरूप हो जाने का उत्फुल्ल वर्णन किया है[१]। शांत रस के पदों में न तो स्वयं कवि सम्मिलित है और न उनमें दाम्पत्य प्रतीकों की योजना की गई है । इन पदों में कवि ने जोगी और जोगणी के रूपक द्वारा काल और माया के तथा परब्रह्म के खेल का तटस्थ रूप से वर्णन किया है । परब्रह्म का खेल बहिर्जगत के साथ-साथ साधक के अंतर्जगत में भी अहर्निशि खेला जा रहा है । अत: कवि ने फागुन मास के आने पर दुनिया के बनकुंज में भटके बिना अपनी आत्मा में ही अपने आप वसंत खेलने के लिए कहा है[२]।

इन पदों में कवि का अभिव्यक्ति कौशल भी प्रशंसनीय है । प्रासानुप्रास, उपमादि विभिन्न अलंकारों से अलंकृत, कुंकुम, रंग, रोली आदि से रंजित कोमल-कांत-पदावली से संयुक्त वे पद कवि के चित्त की प्रसन्नता को भी प्रतिबिंबित करते हैं ।

---

१. रत्य वसंत को रही चिह्न ।। जीत तीत फुले कमल नैन ।।
सकल भाव गुलाल लाल ।। दाओ चूकत नहीं रुप ख्याल ।।
-आली सघन ।। ४ ।।
सब सखियनि भई निसंष ।। प्रीतम प्रेम न घटे अंक
अषा वसंत की रही बान्य ।। पिया प्यारी रस रुप जान्य ।।
- आली सघन ।। ५ ।।
गु०व०सो०ह०लि०पो० ७४०

२. अखायरस पृ० ३१३, ३१५

संगीतात्मकता

यहाँ कवि की संगीतात्मकता अर्थात् नृत्य, गायन, एवं वादन कला-मर्मज्ञता भी व्यंजित होती है। वसंत राग के सर्वथा अनुकूल कोमल स्वर विधान, प्रसंगोचित शब्द विधान एवं भावानुरूप सटीक बिंब विधान के कारण अखा साहित्य में इन पदों का वैशिष्ट्य अपने ढंग का अनोखा है।

" आली " संबोधन से लिखे गये तीनों पद " वसंत राग " के है जबकि " खेलो खेल आप में हो " और " हे हरि हाज हजुर " पद " राग काफी " में है। " खेलत जोगी जोगणी हो " वाला पद " अप्रसिद्ध अखायवाणी " के हिन्दी भजन विभाग में पृ० १८५ -८६ पर छपा है। जिस पर राग निर्देश नहीं है। " खेलो खेल आप में हो " वाला पद भी " अप्रसिद्ध " अखायवाणी " के हिन्दी भजन विभाग के पृ० १८७ पर छपा है किंतु प्रस्तुत पद गु० व० सो० अहमदाबाद की ह०लि०पो० में " राग काफी " के अंतर्गत भी मिलता है। इस प्रकार छह पदों में से पाँच पदों पर राग निर्देश है [तीन पर वसंत और दो पर काफी] जबकि एक पद बिना रागोल्लेख का है।

रचना तंत्र

" दाम्पत्य " प्रतीक का सहारा लेकर लिखे गये उपर्युक्त तीन पदों में से दो में दो दो पंक्तियों के पाँच पाँच श्लोक है और " आली अबको फाग " में ११ मात्रा की टेक के अतिरिक्त नौ पंक्तियाँ है। इन सभी में आद्यंत आंतर-

यमक के साथ-साथ " गाल, गाल का तुकांत- निर्वाह किया गया है। इन तीनों का छंद चार चरणी चोपाई है। " हे हरि हाज हुतुर गुरु की दृष्टे न्याहालीस हो " टेकवाले पद में टेक समेत सत्रह पंक्तियाँ है जिनमें " गाल,गाल का तुकांत " है। जोगी जोगणी के रूपक द्वारा काल और माया के खेल का वर्णन करनेवाले पद तथा अपनी आत्मा के साथ ही "फाग खेलने" की बात कहनेवाले पद में क्रमश: " खेलत जोगी जोगणी हो १ " हो मेरे ललना १ " तथा " खेलो खेल आप में हो १ हो १ मेरे साधो "१ की टेक समेत ३४-३४ पंक्तियाँ है।

अखा कृत जकडियाँ

गुजराती साहित्य में अखा कृत जकडियों का विशेष महत्त्व है। जब तक ये जकडियाँ प्रकाशित नहीं हुई थीं गुजरात को अखा का परिचय शुष्क वेदांती कवि के रूप में एकांगी ही था, और सागर महाराज ने सन् १९३२ ई० में इन्हें जब प्रथम बार प्रकाशित किया[१] तब इनके अखा कृत होने में भी शंका प्रदर्शित की गई। किंतु अनेक ह०लि०पोथियों में प्राप्त होने के कारण, अन्य कृतियों के समान इन सभी में कवि के नाम की छाप होने के कारण तथा कवि के व्यक्तित्त्व की मार्मिक अभिव्यक्ति होने के कारण कालांतर में इन्हें अखा कृत माना जाने लगा। यहाँ इन जकडियों का प्रथम बार विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अर्थ

अरबी में " जिक्र " का अर्थ होता है " ईश-स्मरण "। यह ईश स्मरण अनेक प्रकार से किया जाता है। सूफी साधना में अल्लाह की इबादत दो प्रकार से

---

१. अप्रसिद्ध अक्षयवाणी, पृ० ८३ से १२२

करनेवालों के उल्लेख मिलते हैं-[१] जो लोग अंतराभिमुख होकर मन ही मन अल्लाह का जिक्र करते हैं उन्हें " जिक्रे खफी " कहते हैं और [२] जो अपने भावों का गा गा कर या अन्य किसी रूप में व्यक्त करते हैं उन्हे " जिक्रे जली " कहते हैं।[१]

प्रतीत होता है कि यह " जिक्रे जली " ही कालांतर में " जिकरी " या " जकड़ी " हो गया है।

रूप और प्रयोग

" आईने अकबरी " में " जिकरी " का गुजरात में प्रचलित " देशी गीत " के रूप में उल्लेख किया गया है।[२] डॉ. छोटुभाई नायक का मत है कि प्रस्तुत धार्मिक काव्य प्रकार हिंदुस्थान में काज़ी मोहम्मद ने दाखिल किया।[३] ये सूफी संत काज़ी मोहम्मद वीरपुर [गुजरात] के रहने वाले थे और इनका देहांत सन् १५२१ में हुआ था।[४] गु० व० सो० की ह० लि० पो० ७५३ में सुरक्षित काज़ी मोहम्मद के हिन्दी पदों में " जकडी "[५] शब्द का जिस संदर्भ में प्रयोग

---

१. गुजराती पर अरबी फारसीनी असर, डॉ० छोटुभाई नायक भा०२ पृ० २५

2. The Deysee songs of Gujarat Jackree: Ayeen Akbery: Ed. by Gladwin. Page 31.

३. गुजराती पर अरबी फारसीनी असर, भा०२ पृ० ५२६

४. मीराते एहमदी भा० २ अनु० निजामुद्दिन फारुकी, पृ० १२७

५. सात मेरेठी आगे नाचे, चार बेचार धरे ताल चांग ।।
तीन साहिब " जकडियां " गावे बंदा एक पोकारे बांग ।।६ ।।

हुआ है उसके आधार पर यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि काज़ी मोहम्मद के समय गुजरात " जकड़ी " से परिचित अवश्य था । इसका दूसरा कारण यह है कि सं० १४२७ वि० में विद्यमान जैनेतर गुजराती कवि आसाइत [गाँव सिद्धपुर, गुजरात][1] और उनके पुत्र मांडण की जकड़ियाँ उपलब्ध है । लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्याभवन, अहमदाबाद " के ग्रंथ भंडार के ह० लि० पत्र संख्या ७ में अन्य कवियों की जकड़ियों के साथ " आसाइत " की भी " जकड़ी " मिलती है ।[2] परंतु वह संख्या में एक ही, अपूर्ण एवं कवि के नाम की छाप रहित होने के कारण जब तक कवि के नाम की छापवाली एकाधिक जकड़ियाँ

---

१. कवि चरित : के०का०शास्त्री, पृ० १

२. आसाइत

" जषडी " राग धनासी ।।

घनकां बेलडां बेहां घनका लोइणडा बेहां ।

जाँण कारि ऊर जन बांण वाके मुहारडां बेहां ।

जाणे करि चडी रे कमाणि कमाण बांण चडीअ

दीसिति नयन बांण घोलंतीआं ।।

लडषाडिति छियल घुलि चूंमि जोंणि कि विसहर डंकीआ ।

अगमंति बलो धनुष धारा हाथ पर हथ्थ वसेषणा।।

परहरंति तन मन सरस अमृत मुष तेरा लोयणां ।। १ ।।

तोरे अहरे रंग कुअे वणि । तनु लंक जांणि सब

जुग मोही अडा बेहां ।

प्राप्त न हों तब तक "जकड़ी लेखक" के रूप में " आसाइत " पर विशेष विचार नहीं किया जा सकता ।

मांडण कृत तीन जकडियाँ "मवाई संग्रह" में प्रकाशित है[1] । यद्यपि विद्वानों द्वारा मांडण का समय निश्चित नहीं किया गया है तथापि श्री के० का० शास्त्री

चंदनी श्रषो आप शेषों । जाणि मोयंगम जल पीयां ।
लटकटी वेणी म्रिग नयणी षांभ बांण पुलं बीजं ।
जिसि कांम बेटी रूपि रुअडी, जिरहु दरसण स्थंन चूं ।
दरसणो चमकि वीज भबुकि अधर राता रंग चू ।। २ ।।
उंची उंची मेड लीआ बेहां । तलि छांहनी बेला । आ
मोरीअ पायल बाफणडी बेहां ।
किम करि चहुं सकलि किम चडुं मेवडुं एकली सुणी सहेली ।
नेह लागु तु रहि टुक आणु गुल चोरि षाडिया ।
चिरू कोई न कहि नवरंग मोला नवा चोला ओढणि
दक्षण साडिया ।
रुणभूणि नेउर सुणि देउर बहुत उंची मेडीआं ।। ३ ।।
मोरु बाबलु चाडिकरि बेहां ।
मुज हासी दीयि दासु जीव लागा बेहां ।
त्यांकुं ऊपर चाडि लियि ऊपर भाडि लीयि
प्रेम दीयि हेम लंक लुलवीए ।
गलि लागि रहीए साच कहीए सुंदर अमृत घुंटावीआ
बाबुला मोरा न रहि वरयाडि किसकुं कीपि ।। ४ ।।

१. दरद बीराना सो नहि जाना पंडा पुराना को होजा,
ले तसबी नहि खोज्या मनकुं, बसे नीरंजन मन दोजा,
कैसे नाहो थायो बीन थमे जप तप उठे चित्त खोजा,
कहे मांडण सुण दोस्त हमेरे, क्या एकादशी और क्या रोजा ।। ३ ।।
–मवाई संग्रह : महिपतराम नीलकंठ, सन् १८६४ पृ० ५३

द्वारा दी गई इस महत्त्वपूर्ण सूचना के आधार पर कि " आसाईत ने अपने पुत्रों की सहायता से भवाई के ३६० वेश प्रस्तुत किये[1] " यह कहा जा सकता है कि मांडण विक्रम की १५ वीं शताब्दी के अंत तक अवश्य विद्यमान रहा होगा। इस समय-गणना के अनुसार काज़ी मोहम्मद, मांडण के परवर्ती सिद्ध होते हैं। अत: जब तक अन्य किसी जैनेतर गुजराती कवि द्वारा रचित जकड़ी प्राप्त न हों तब तक मांडण को " गुजरात का प्रथम जकड़ी लेखक " कहा जा सकता है।

परंपरा

गुजरात में जकड़ियों की दो परंपरायें दृष्टिगोचर होती हैं-[१] जैनेतर कवियों की और [२] जैन कवियों की। अखा के पूर्ववर्ती जैनेतर कवियों में " मांडण भवैया " और काज़ी मोहम्मद " के अतिरिक्त अखा के परवर्ती संतों में " दीन दर्वेश[2] " और " नभुलाल द्विवेदी[3] [गाँव नड़ियाद, गुजरात] की जकड़ियाँ मिलती है। गुजरात के जैन कवियों की रचनाओं में

---

१. कवि चरित, पृ० ४

२. नि:रभे ग्यानी नीगम नीशानी, नर ध्यान गीधा नंगी।
पीया प्याला मन मतवाला, संत सुखाला सानंगी।
झिलकी दरीया सो भरमरीया, बीच बीच भर्या वानंगी,
" दीन " कहे सुनता बे गाफल, तीन लोक सरता नंगी ।। १६ ।।
-श्री भवानी भवाई प्रकाश: संपा० मुंशी हरमणिशंकर धनशंकर, पृ० १४१

३. जकड़ी-२
पंड पेख दृष्टांत देख ले पानी के परपोटे से,
कौधों बढता पवन तरन जल, कौधों बढता रोटे सें,
कहत " नभु " सुन गाफल गींधी पकड जायगा टोटसे,
माने तो कुट्टन बात भली है, नहीं तो हमारे सोटे से। १।

प्राप्त जकड़ियाँ दो रूपों में निर्दिष्ट की जा सकती है। [१] स्वतंत्र मुक्तक रूप में[1] और [२] आख्यान-काव्य के मध्य काव्य प्रकार के पदों के रूप में।[2] ह०लि०पत्र संख्या ७ में संगृहीत " विनय कवि " कृत दो जकड़ियों में से एक जकड़ी उदाहरण के रूप में देखी जा सकती है[3]।

न्यात जातमें ख्यात बिचार्या, जान्यो बढता लोटेसे,
नमणा ढमणा की नीति जानके, मोया छोटे मोटेसे;
कहत " नमु " सुन गाफल गींधी, फीरा सत्त कर ओटेसे
माने मन कुट्टन बात भली है, नहीं तो हमारे सोटेसे । २
मे मेरीमें मुरख भुल्या, सगां साथ के जोटेसे;
धन माल घरबार नारियुं, रीफा देखी घोटेसे,
कहत " नमु " सुन गाफल गींदी, रीफा नाणे खोटेसे,
माने तो कुट्टन बात भली है नहीं तो हमारे सोटेसे । ३

- नमु काव्य:पृ० २२४

१. दृष्टव्य: वीर-जिन गीत आदि, गीत संग्रह: पत्र -७ क्र
-ला० द० भा० सं० वि० मंदिर, ह० लि० पों० ग्रंथ भंडार,

२ :अ: हीर कलश कृत सिंहासन बत्रिशी, कथा आठमी, जकड़ीनो ढाल
-वही० पत्र २१, नं० १७५

:आ: समयसुंदर कृत द्रौपदीरास, -वही० पत्र २१, पृ० ७१४

३. इति जीव काया जकड़ी । नायकी।
अचरीज एक भयो रे सयांनी सोल शृंगार बनाए पिया कारन
पिया गिरनार बसानी ।। १- अ
मोकुं छोरी गए सखी मोरी रेवत गंगवछांनी
वाही गंगामें करगही निरखुं हस्ती डूबत ध्येरी के पांनी ।।२:अ:
चलो रे सखी कोइ नेमि देखलावो अचरिज पुछुं सइयांनी
नेमि राजूल दोउ मुगति सिधारे विनय नमे नेमि ग्यांनिए ।।३ अ०

अखा की जकड़ियों का वैशिष्ट्य

डॉ० सत्येन्द्र ने व्रज - प्रदेश में प्रचलित " जिकड़ी " भजनों का संबंध गुजरात के इन देशी गीतों से होना बताया है[१]। " हिन्दी साहित्य कोश " में " जिकड़ी " का परिचय देते हुए उन्हें व्रज मंडल में प्रचलित होली के अवसर पर ग्राम मंडलियाँ द्वारा गाये जानेवाले भजन[२] कहा है। उसके रचनातंत्र का परिचय देते हुए उसी ग्रंथ में कहा गया है : " साधारणतया उन भजनों में चार चौक होते हैं। उन्हें गानेवाले-- रसिये जो गाते समय बोल उठते हैं - अगेड़िया, जो दुहरातें है - पिछोडिया और जो लंबा खींचते हैं -- हेकड़ा कहलाते हैं। जिकडी का प्रारंभ गाहे से होता है। गाहे छ चरणों का होता है। इस प्रकार जिकड़ी के पांच अंग उल्लेखनिय है [१] गाह्यौ [२] टेक [३] साखियाँ या फूल, [४] फड़ावन और [५] उड़ान या छुटन। किंतु अखा की जकड़ियाँ न तो होली के अवसर पर ग्राम मंडलियों द्वारा गाये जाने के अनुरूप है और न तो भजन के अनुरूप। अखा की जकड़ियाँ अंतस्तव या उद्दीपन की दृष्टि से उर्मि प्रधान एवं नितांत वैयक्तिक है। अधिकांश जकड़ियों में एक या दूसरे रूप से आत्म [प्रिया] और परमात्मा [प्रियतम] के संयोग की विभिन्न दशाओं का उत्फुल्ल वर्णन है। प्रत्येक में चार चरण के पश्चात् टेक का पुनरावर्तन होता है। प्रत्येक में दो और

---

१. साहित्य संदेश, भाग २६ अंक ६ " अलिगढ " जनपदीय गीत : जिकडी लेo श्री राम शर्मा, पृ० ३७५

२. हिन्दी साहित्य कोश, संपा० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, सं० २०१० पृ० ३०४

तीन [२ + ३ + ३ + ३ + ३] के हिसाब से चौदह चरण है। इनका न तो कोई छंद है और न तो कोई राग विशेष। "रण पिंगल" में उल्लिखित "जयकरी"[१] एवं "दलपत पिंगल" में सूचित "जेकरी"[२] छंद से भी ये जकड़ियाँ भिन्न है। पिंगल ग्रंथों में सूचित लक्षणों के अनुसार न तो इनमें १५ मात्रायें है, न तो अंत में लघु गुरू और न तो १, ५, ६, १३ पर यति का निर्वाह। संभव है कि ये प्राचीन छंद अपनी शास्त्रीयता को खोकर कालक्रमानुसार "जकड़ी" पद के रूपमें व्यवहृत होने लग गये हों। अखा की जकड़ियों को लोक प्रचलित पद कहा जा सकता है।

वर्ण्य विषय

वर्ण्य विषय की दृष्टि से जकड़ियों का विभाजन निम्नरूपेण प्रस्तुत किया जा सकता है -

[१] प्रिया- प्रियतम की मिलनावस्था : ६, ७, ८, १०, ११, १२, १५, १६, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २६, २८, २९, ३०, ३३, ३७

[२] प्रिया की आनंदावस्था - वर्णन: १३

[३] प्रेम गली की महत्ता- वर्णन: १४

[४] प्रियतम की सर्व व्यापकता : १७

[५] प्रियतम की सोलह कला- पूर्णता : ३४

---

१. चरण चरणमां पंदर कला लघु अंते आवे भला
जाति जयकारी जुगते करो, शशिशर तव जख तालो धरो।
-रणपिंगल पृ० ५

२. प्रतिपद मात्रा पंदर धरी, जुगते छंद करो जेकरी।
ताल प्रथम श्रुतिए धरो, अंते लघु गुरु अक्षर करो।
- दलपत पिंगल १०५

[६] प्रियतमा से मिलने के लिए लज्जा त्याग की आवश्यकता : ३१

[७] प्रियतम की बहुविधरूपता : ३५

[८] मनका भरोसा न करके अगम वस्तु को प्राप्त करने का कथा : १३

[९] जीवात्मा की संशयग्रस्तावस्था : ३

[१०] मूर्ख एवं कुमति जन का स्वभाव लक्षण : ४, ५

[११] अज्ञान की परब्रह्म रहितता : २५

प्रिया [अखा] ने अपने प्रियतम को " साजन," " धूरत," और " सलुणा मित ", " सलूणा साथी ", " ढोलन ", " मित ", " मीरु ", " प्रितम, " पियु ", " कामी ", " शाह ", " अजब खेलारा ", " लाल " आदि प्रेमपूर्ण उपालंभों से संबोधित किया है।

अपने ढोलन के " ढलपर " आने पर प्रिया दूध से उनका पाद प्रक्षालन कर धन्यता का अनुभव करती है[१]। अपने धूरत एवं सलोने मित, साथी के आने परप्रिया अत्यंत आनंद की अनुभूति को दूध की वृष्टि के समरूप बताती है[२]। पूर्णरूप से अपने " अलख पियु " को लख कर प्रिया कभी अपने नैनों की सार्थकता

---

१. मेरा ढोलन ढालकर आया रे हूं दूधे धोवंगी पाया रे।

— जकड़ी १० अक्षय रस पृ० २३

२. आज दूधे वूठया मेहा रे, ओला साकर केरा रे।

प्रेम करी पियु आया रे, मैं किस किस चावुं पाया रे।

— जकड़ी १९, वही० २७

अनुभव करती है[१]। तो कभी एक मात्र अपने प्रियतम के ही सामने घूंघट खोलने की बात कहती है[२]। अपनी प्रिया के घर न्हाव के अपने आप चले आने पर घेन [प्रिया] के लाल गुलाल[३] हो जाने की बात को काले- कच्ची बुद्धिवाले लोगों के नहीं समझ सकने की बात कहती है[४]।

इस प्रकार इन पदों में आद्यंत माधुर्य एवं प्रसाद गुणों के अनुरूप कोमल एवं मृदु पदावली का व्यवहार हुआ है। चित्र खींचने में समर्थ शैली के द्वारा कवि ने प्रिया प्रियतम की मिलनावस्था की विभिन्न मन:स्थितियों एवं मुद्राओं के सुंदर चित्र निर्मित किये हैं। इनमें व्यवहृत दाम्पत्य प्रतीकों को देखकर यह कहने की अपेक्षा कि "इनमें कवि के वैष्णवी संस्कार अभिव्यक्त हुए है[५]" यह कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि इनमें रसरूप ब्रह्म के साथ संत अखा की एकमयताजनित दिव्य आनंद की रसात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

---

१. अलख प्रभु को लखिया रे, तो ए साची अखियां ।
– जकड़ी १८ पृ०२१

२. पियु बोलति मैं हि रे बोलू । सोई बिना घूंघट नाहीं खोलूं ।
– जकड़ी १६ पृ० ३०

३. जिस घर न्हाव आवे चली आवे । सो घेण सुख रू रू में पावे
– जकड़ी ३० पृ० ४८

४. क्या जाने लोका काला रे । घेण भयी शो लाल गुलाल रे ।
मोहि पियु सेज पर मिलिया रे, तब की बहोत मै रलिया रे ।
– जकड़ी २६ पृ० ४

५. अखो एक अध्ययन, पृ० १६५

" भजन "

" अक्षय रस " में अखा के ३२ भजन छापे गये हैं। किंतु उनमें वसंत-फाग के भी तीन पद मिल गये हैं। इन तीन पदों को निकाल लेने पर अखा के भजनों की वास्तविक संख्या २६ की होगी।

भजन शब्द " भज् " धातु से निर्मित है। " भज् " धातु का अर्थ है भजना या सेवा करना। अत: इष्टदेव या इष्ट तत्त्व को भजने के लिए या उनकी सेवा के लिए निर्मित पद [पंक्ति समूह] को भजन कहा जा सकता है। आचार्य डोलरराय मांकड का मत है कि भजनों में भक्ति भाव निहित होता है [भक्ति अर्थात् समर्पण]: भजनों में समर्पण भाव के उपरांत तत्त्वज्ञान, ज्ञान, वैराग्य, त्याग आदि का भी निरूपण होता है। ये भजन सामूहिक एवं वैयक्तिक दोनों प्रकार के हैं। कई भजनों में " मनवा ", " संतो ", " बाबा " " अवधू " को संबोधित कर उपदेश एवं आत्मानुभूति की बात कही गई है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन भजनों का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

१. उपदेश प्रधान -

: अ : सद्गुरु सेवन और आत्मानुभव प्राप्त करने पर बल

१, १८, ३२.

:आ : वैराग्य : ४

:इ : आत्मावलोकन : १२

: ई : सूझ, बुझ और ज्ञान की प्राप्ति : १६, २२, २५

:उ : अहं त्याग : २६

: ऊ : दैन्य - विनय : ३०

२. आत्मानुभूति की मस्ती -

३, ६, ८, १०, १३, १४, २६, ३१,३२

३. ब्रह्मनिरूपण -

७, ९, १७, १९, २०, २११, २७

४. हरिजन भेद, ज्ञानी की प्रशंसा -

२, ३३, २५

५. ब्रह्मपद वर्णन -

२९

६. यौगिक प्रक्रिया वर्णन -

१५

साखियाँ -

संत साहित्य में " साखी " विशेषकर साधना और ज्ञान संबंधी मुक्तकों के लिए रूढ़ हो गया है। परंपरा से यह देखा जाता है कि " साखी " के अंतर्गत केवल निर्गुणियों के ही दोहों का अंतर्भाव होता है। अन्य किसी भी संप्रदाय के ज्ञान वैराग्य संबंधी दोहे " साखी " में प्रवेश नहीं पा सकते[१]। यही कारण है कि " साखी " शब्द को सुनने पर सर्व प्रथम कबीर और अन्य संत कवियों का ही ध्यान आता है। अखा की रचनाओं में प्राप्त उल्लेखों[२] के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारत के संत साहित्य में व्यापक रूपसे प्रचलित साखियों से वे अवश्य परिचित थे।

---

१. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डॉ० शकुंतला दुबे
सन् १९५८, पृ० ३८६

२. अ. साखी शब्दो नित्य कहे कुबुद्धि, सुबुद्धि दोय -१२।। कुमति अंग-साखी

आ. समजु साखी अर की ओचरे, तेनी तरोवड शुं पंडित करे
। ७१६ । छप्पा.

अखा की साखियों का पहला प्रकाशन सं० २००८ वि०, में " श्री अखाजीनी साखीओं " [१] के नाम से हुआ । प्रस्तुत संग्रह में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं की साखियाँ संगृहित है । सभी साखियाँ गुजराती लिपि में मुद्रित है । " कहानवा आश्रम " से प्राप्त ह० लि० पोथियों में ये साखियाँ जैसी है वैसी ही छापी गई है – संपादक ने अपनी ओर से केवल अनुक्रमांक ही लगाये हैं । इसमें अंगों की संख्या १०१ है और साखियाँ की १७२६ है । अखा के अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित मात्र कर देने का प्रयोजन होने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ अन्य ह० लि० पोथियों के साथ मिलाकर सुसंपादित नहीं किया गया है । टीका विभाग में केवल प्रारंभ के थोड़े अंगो के शब्दार्थ दिये गये हैं और अखा के " तत्वज्ञ ", " स्वानुभवी " एवं " पूर्ण पुरुष " रूप का ही पुन: पुन: कथन किया गया है । इसमें साखियों के साहित्यिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, तुलनात्मक एवं शोधपरक अध्ययन का सर्वथा अभाव है ।

अखा की साखियों का दूसरा संपादन कुँवर चंद्र प्रकाश सिंह ने " अक्षय रस " [सं० २०१९ वि०] में किया [२] । इसमें " श्री अखाजीनी साखिओ " को आधार रूपमें स्वीकार कर फा० गु० सा० स०बम्बई, ह०लि०पो० संख्या २९७, ३३१ और ३४८ तथा गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद की पोथी संख्या २२१९ की सहायता लेकर कुल १४५० साखियों के १०५ अंग

---

१. श्री अखाजीनी साखीओ : केशवलाल ठक्कर

२. अक्षयरस : संपा० चंद्र प्रकाश सिंह, सन् १९६३, पृ० १७३ से ३७६

संकलित हैं। इनमें से केवल २०४ साखियों और ८६ अंगों का पाठांतर देने का प्रयत्न किया गया है। कहीं कहीं गुजराती साखियाँ[१] भी छाप दी गई है। इसके अतिरिक्त डॉ॰योगीन्द्र त्रिपाठी के पास सुरक्षित ह०लि०पोथी में कई हिन्दी साखियाँ ऐसी है जो उपर्युक्त दोनों संपादनों में से एक में भी नहीं छपी है। फार्बस गु० सा० सभा की ह०लि० पोथी संख्या ३३१ में जो १८५१ साखियों के १२५ अंग है इनमें भी कई साखियाँ अप्रकाशित है। अत: अखा की सभी साखियों के शुद्ध एवं शास्त्रीय संपादन होने की आवश्यकता अभी भी बनी रहती है।

अखा की साखियों से संबंध उपलब्ध सामग्री के आधार पर साखियों के नामकरण, उनके यौक्तिक क्रम एवं रचनातंत्र, साखियों में विषयवस्तु की क्रमबद्धता आदि पर विचार करने पर निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं:

१. कहीं कहीं अंगों का नामकरण उनके प्रारंभ की पंक्ति के आधार पर या या शब्द के आधार पर हुआ है[२]।

२. कुछ अंगों में यौक्तिक क्रम का निर्वाह किया गया है[३]।

३. कहीं कहीं एक ही अंग की साखियों में विषय वैविध्य दृष्टिगोचर होता है

---

१. दृष्टव्य : अक्षय रस : साखी विभाग के ब्रह्म सागर, शिक्षा, आशा, नैराशी, भवखोड्य, जाग्रत आदि अंग।

२. दृष्टव्य: अक्षयरस: तपास, खल, माया, सूक्ष्म, अदबद, प्रत्यक्ष आदि अंग।

३. वही, संत-६ और संत से परिहार-१०, असंत ६६ और कपटी ७०, अनुभव-७१, प्रतीत ७२ और ज्ञान -७३; सती ८२ और ज्ञानी ८३; नैराश १०३ और उदय केवल १०४ आदि अंग।

४. वही० सबगि ८६, हंस परीक्षा -२५, निष्टज्ञान -१४, विवेक वेत्ता १३ शब्द परीक्षा -११, उपदेश ४० आदि।

४. कहीं कहीं एक ही विषय के दो दो, तीन तीन अंग मिलते हैं[1]।

५. कहीं कहीं एक अंग की साखियाँ दूसरे अंग में भी मिल गई है[2]।

६. कहीं एक ही अंग के विभिन्न नाम मिलते हैं[3]।

७. कई अंगों की साखियाँ अपने अंग के शीर्षक के अनुसार विषयवस्तुगत ऐक्य का आद्यंत निर्वाह भी करती हैं[4]।

---

१. अदायरस: कुमति, दुर्मति, गुरू, निष्टज्ञान-~~२४~~ हरिजन, सहेज: आदि अंग ।

२. अदायरस के " चेतन " में " असाजीनी साखीओं " के प्रेमपीड़ तथा सहेज- ~~शक्ति का मिश्रण है~~ । शक्ति का मिश्रण है।

अदायरस के "दुर्बलता" अज्ञान में	।।	विवेक तथा हरिजन	।।
।। आतुरता में	।।	कृपा अंग का	।।

३. अदाय रस का " आत्म ज्ञान " " असाजीनी साखीओ " में "चेतना अंग" है

।।	ब्रह्मसागर	।।	विचार	।।
।।	सती	।।	भक्ति	।।
।।	खलज्ञानी	।।	खल	।।
।।	खोजी	।।	खोज	।।

४. दृष्टव्य:

अदायरस, बिरही, एकसाल, लाल, बेहद, अजबकल, वेषा देहदर्शी, गेबी, संसारी, रामपरीक्षा, मोरी भक्ति आदि अंग ।

८. सभी अंग छोटे बड़े हैं अर्थात् प्रत्येक अंग में साखियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है। कहीं दो दो तीन तीन साखियाँ है तो कहीं सैंतालीस तक[१]।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि [१] कवि ने साखियों की रचना समय-समय पर अपने मनकी सुफान एवं प्रसंग के अनुसार की है और [२] साखियों का अंगों में जो विभाजन किया गया है वह किसी पूर्व योजित व्यवस्था के अनुसार नहीं है अर्थात् अंगों की रचना में अतंत्रता है। किंतु ब्रह्मलीला[२] में प्रति चोखारा के बाद ५-५ श्लोकों के पश्चात् छंदों की जो व्यवस्था है तथा गुरु शिष्य संवाद में[३] चोपाई - चोअक्षरा दोहा - चोपाई और " समत " के संस्कृत श्लोकों[४] की जो व्यवस्था है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि स्वयं कवि ने अपने हाथों शुरू से ही साखियों की अंगबद्ध रूपमें लिखा होगा।

अखा के पूर्ववर्ती ज्ञानमार्गी जैनेतर कवियों में से विशेष कर नरसिंह महेता कृत " हारमाला " के ६५ वें पद के पश्चात् एक दोपक साखी[५] तथा " श्री कृष्ण जन्म समाना पदों[६] " में पद १-३-४ और ६ के प्रारंभ में एक एक

---

१. दृष्टव्य: अक्षयरस : विश्व रूप, [दो साखियाँ], कुगुरु [तीन साखियां], उपदेश अंग [छत्रीस साखियाँ], नैराशी को अंग [सुन्तालीस साखियाँ]

२. वही० पृ० ८७ से ९०

३. " अखानी वाणी " पृ० ३५४ से ३९९

४. अखो एक अध्ययन : पृ० १६३ से १६६

५. दृष्टव्य: नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह, सं. १९६९ पृ० २५

६. वही० पृ० ४२८, ४२९, ४३०, ४३१.

गुजराती साखी[१] मिलती है किंतु ये साखियाँ स्वतंत्र मुक्तक के रूप में न होकर आख्यान काव्य में कथा वस्तु को आगे बढ़ाने के लिए व्यवहृत होनेवाले दोहा चोपाई के " वलण " के समान है । इनमें कवि नाम की छाप भी नहीं है । अत: ये साखियाँ [!] कबीर, दादू, अखा, वस्ताविश्वंभर, निरांत आदि की संत साहित्य में रूढ़ " ज्ञान प्रधान " हिन्दी साखियों की-सी नहीं है । अखा के समकालीन संत कवियों में गोपाल द्वारा रचित " ज्ञाननि साखीओ " बृहद् काव्य दोहन भाग ५ " में प्रकाशित है किंतु उन साखियों का निर्माण संवत नहीं मिलने के कारण तथा कवि के रचना काल की अंतिम सीमा निश्चित नहीं होने के कारण जब तक अखा के किसी पूर्ववर्ती गुजराती संत कवि की साखियाँ प्राप्त न हो तबतक गुजराती संत साहित्य में " साखी " को प्रयुक्त करनेवाले प्रथम संत कवि के रूप में अखा का स्वीकार किया जा सकता है ।

---

१. नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह, सं० १९६६ पृ० ४२६-३०, पद ३

कंस कुंवरने फरी मंगाव्या, लेई शल्या साथे पछाडया रे

कहे नरसैंयो कुवर मार्यो कंस, त्यां नारदे मर्म देखाडयो रे ।

साखी

नारदे मर्म देखाडीयो, कुंवर मार्यो कंसराय रे,

व्हारे चढजो विट्ठला, घणुं दु:ख पामे तुज माय रे ।

पद ४ राग कालेरा

त्राहि त्राहि सउको करे नगरलोक भलो भलो तुंज अविचार रे,

साहि थाओ श्यामला : मुखे वदे ते नर ने नार नार रे ।। १ ।।

इतना ही नहीं अखा की साखियाँ कबीर आदि संतों की काव्य धारा को गुजरात के संतों की काव्य धारा से जोड़नेवाली कड़ी के समान है । अत: कबीरादि संतों में होती हुई " साखी " की चली आई हुई अस्खलित धारा को गुजरात में व्यापक रूप से बहाने का श्रेय भी अखा को ही दिया जा सकता है ।

साखियों का काव्यत्व

आचार्य उमाशंकर जोषी का मत है कि " अखा की साखियाँ " छप्पा की तुलना में नि:संशय रूप से फिकी [काव्यत्व रहित] है[१]। कहा जा सकता है कि यह अभिप्राय सर्वांश शुद्ध नहीं है । क्योंकि कवि भी अंततोगत्वा एक मनुष्य है और कुछ विशिष्ट क्षणों में उसकी वाणी सरस्वती के जैसा श्रृंगार करने में समर्थ होती है, यह आवश्यक नहीं कि वह प्रतिक्षण वैसा कर सके । अत: यह कोई अपेक्षित नहीं कि उसके जीवन में जो कुछ उसके मुंह से निकले वह सब केवल पद्यबद्ध होने के कारण उच्च कोटि की कविता का पद प्राप्त करे । कितनी ही साधारण बातें भी वह पद्यबद्ध करके कह सकता है । अत: " छप्पा " की तरह साखियों में से भी कुछ साखियाँ ऐसी अवश्य निकाली जा सकती है जिनमें काव्यत्व का आविष्कार न भी हुआ हो । किंतु इस कारण समस्त रचना के संबंध में ऐसा अभिप्राय प्रस्तुत करना अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता । तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किये गये छप्पा और साखियों के तुलनात्मक अध्ययन से तथा सप्तम अध्याय में प्रस्तुत " अखा का अलंकार-

---

१. अखो एक अध्ययन, पृ० १६१

विधान " नामक परिच्छेद में उदाहरण रूप में दी गई साखियों के अध्ययन से भी उनकी काव्यात्मकता का बोध हो सकता है। वास्तव में पाश्चात्य साहित्यालोचक " अंबरक्राबी " के शब्दों में कहा जा सकता है कि " काव्य का तत्व शुद्ध अनुभूति है जो हमारे राग प्रधान जीवन में ही नहीं प्रत्युत विचार प्रधान जीवन में भी संभव है। विज्ञान और दर्शन के सत्य भी हमारे आनंद के विषय बन सकते हैं"। अखा की कविता में यह " शुद्ध अनुभूति " गत रसात्मकता है और किसी विषय के वर्णन की रसात्मकता इसी बात पर निर्भर करती है कि कवि के हृदय में उस विषय की अनुभूति सच्ची हो और उसे अभिव्यक्त करने में उसकी वाणी सशक्त हो। अखा की किसी भी कृति में इन दोनों तत्वों का अभाव नहीं पाया जाता।

अखा की साखियों की भाषा प्रौढ़ प्रांजल और समास-युक्त है। कोई भी कवि " साखी " रूप गागर में भावना- विचार का सागर तभी भर सकता है जब वह भाषा की समास-शक्ति में अच्छी तरह दक्ष हो। अखा में नि:संदेह यह शक्तिपूर्ण मात्रा में है। इनकी साखियों में आवश्यकता-नुसार ओज, प्रसाद और माधुर्य - तीनों की अवस्थिति है। अलंकारों में अर्थालंकारों के साथ साथ शब्दालंकारों का भी सुष्ठु प्रयोग देखा जा सकता है। रस की दृष्टि से इनमें शांत रस की प्रधानता है।

संतप्रिया: नामकरण की समस्या

श्री नर्मदाशंकर मेहता प्रस्तुत ग्रंथ का मूल नाम " सर्वांगी " बताते हुए " संतप्रिया " को उसका प्रथम अंग कहते हैं।[१] किंतु वस्तुस्थिति इसके

---

१. अखो, पृ० ५१

विपरीत है। स्वयं अखा ने जिन पंक्तियों में संतप्रिया को मूल ग्रंथ के रूप में और "सर्वांगी "प्रकरण" को उसके एक अंग केक रूप में स्पष्टत: निर्दिष्ट किया है उन्हें सही वस्तुस्थिति के अंत:साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

संतप्रिया

अ. "संतप्रिया" सुखवर्धनी जाके हिरदे हेत।
अखा करत आलोचना ता घर आप उल्लाला देत[१] ।। ४ ।।

आ. "संतप्रिया संतकु रूचे बड़आसे शिवरूप
रूप अरूपी जे नरा अनुभे अकल अनूप[२] ।। ५ ।।

सर्वांगी प्रकरण

सर्वांगी प्रकरण कह्यो कवित्त चोरासी चोज
बीस कला मध्य दोहरा कोई ज्ञानी देखे खोज[३] ।।

इसके अतिरिक्त संतप्रिया की जो ह० लि० पोथियाँ लेखक को चाप्राप्त हुई है उनके आरंभ एवं अंत में प्रस्तुत ग्रंथ का "संतप्रिया" के नामसे ही उल्लेख है[४]। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ग्रंथ का मूल नाम

---

१. अक्षयरस, पृ० १३६

२. वही० पृ० १३६

३. अक्षयरस, पृ० १६३

४. [अ] संतप्रिया लिष्यते

[आ] श्रीती संतप्रिया समाप्त।:। श्रीरस्तु।। ह०लि०पो० डॉ० त्रिपाठी

[इ] अथ संतप्रिया लिष्यते

[ई] इति श्री अषास्वामी विरचित सं०प्रि० ग्रंथ संपूर्णम ।समाप्तम
-फा०गु०स०स० ह०लि०पो० ३३१

" संतप्रिया " ही है और " सर्वांगी प्रकरण " उसका एक अंग है।

अभिनव नामकरण

गुजरात के अन्य किसी संत ने संतप्रिया नामक काव्य की रचना नहीं की है। इतना ही नहीं नानक[१], नामदेव[२], कबीर[३], दादू[४], सुंदरदास[५], दरिया-साहब - मारवाड़वाले[६] आदि अन्य संतों की रचनाओं की विभिन्न सूचियों में भी कहीं " संतप्रिया " अभिधान संयुक्त कोई रचना दृष्टिगोचर नहीं होती है। अतः कहा जा सकता है कि उपलब्ध भारतीय संत साहित्य में इस अभिनव नाम से संयुक्त प्रस्तुत संतप्रिया प्रथम प्रकार की रचना है।

कृति की अपूर्णता एवं प्रकरण की संख्या

अब कहुं परब्रह्म पीषका वस्तु विश्व को भेद
रूप अरूपी व्हे रमे जे जगत दुर्लभ देव ।।१०६ ।।

उपर्युक्त दोहे के आधार पर श्री महेताजी सर्वांगी प्रकरण के अतिरिक्त संतप्रिया के तीन और अंग होने का अनुमान करते हैं : [१] परब्रह्म का प्रति-

---

१. संत साहित्य : डॉ॰सुदर्शनसिंह मजिठीआ सन् १९६२ पृ० २०९ से २१५

२. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन : डॉ॰विनयमोहन शर्मा

३. उत्तर भारत की संतपरंपरा: पृ० १७४ से १७९

४. वही० पृ० ५०० से ५०९

५. सुंदर ग्रंथावली, पृ०

६. संत दरिया- एक अनुशीलन : डॉ॰धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
पृ०

पादन, [२] वस्तु [ब्रह्म], और विश्व का भेद तथा [३] ब्रह्म का रूप-अरूपी खेल । अहमदाबाद, बड़ौदा और बम्बई के ग्रंथागारों में सुरक्षित संत अखा से संबंधित विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में लेखक को केवल दो ही प्रकरण- [१] सवाँगि और [२] अन्वयव्यतिरेक उपलब्ध हुए हैं । इन प्रकरणों का गवेषणात्मक अध्ययन करने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है -

[१] विषय - वस्तु निरूपण का प्रवाह अन्वय व्यतिरेक प्रकरण के अंतिम श्लोक के पश्चात् एकदम खंडित हो जाता है ।

[२] सवाँगी प्रकरण के पूर्ण होने पर स्वयं कवि ने उस प्रकरण के प्रतिपाद्य के साथ " कवित्त चोरासी चोज " तथा " बीस दोहरा " का जो स्पष्ट उल्लेख किया है वैसा कोई विवरण अन्वय व्यतिरेक प्रकरण में कहीं भी नहीं है ।

[३] " संतनां लक्षण ", " अवस्था निरूपण ", चित्तविचारसंवाद ", " गुरु शिष्यसंवाद ", " अनुभवबिंदु ", " ब्रह्मलीला ", " कैवल्य गीता " और " अखेगीता " की फलश्रुति है तो प्रस्तुत ग्रंथ की भी फलश्रुति सूचक पंक्तियाँ अवश्य होनी चाहिए । अतः यह कहा जा सकता है कि संतप्रिया अपूर्ण है । अतएव उसके और प्रकरण होने ही चाहिए ।

प्रकाशित " संतप्रिया " में श्लोक संख्या की अव्यवस्था

सवाँगी प्रकरण कह्यो कवित्त चोराशी चोज ।
बीस कह्या मध्य दोहरा कोई ज्ञानी देखे खोज ।।

" अक्षयरस " में जो उपर्युक्त दोहा बिना उसके किसी समुचित उपयोग के फुटनोट[१] में उतार दिया गया है वह संतप्रिया की श्लोक संख्या की निर्धारणा

१. अक्षयरस : पृ० १६३

में महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है । संपादक ने इस महत्त्वपूर्ण अंत:साक्ष्य का कोई उपयोग नहीं किया है । प्रस्तुत दोहे में कवि के कथनानुसार " सर्वांगी प्रकरण " में कुल मिलाकर १०४ श्लोक-८४ कवित्त और २० दोहे होने चाहिए । परंतु " अक्षय रस " में प्रस्तुत प्रकरण के १०८ श्लोक छापे गये हैं । चूँकि ये अतिरिक्त श्लोक न तो प्रक्षिप्त है और न अन्य किसी कवि के हैं । विषयवस्तु, भाषा-शैली एवं कवि के नाम की छाप की दृष्टि से सभी श्लोक अखा के ही हैं । किंतु उपलब्ध सभी हस्तलिखित पोथियों की अपेक्षित छानबीन संपादक के नहीं करने के कारण यह अव्यवस्था हुई हैं । " अक्षयरस " में छपी संतप्रिया " के सर्वांगी प्रकरण " में से दोहा संख्या १०, २६, ८५ और ८६ को निकाल लेने पर यह प्रकरण कवि की सूचनानुसार व्यवस्थित हो सकता है । आगे-पीछे के श्लोकों के संदर्भ में १० वें दोहे पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्रस्तुत दोहा अस्थान पर है । इसके होने से अन्य श्लोकों में निरूपित विषय वस्तु के प्रवाह में व्याघात होता है । आठवें, नवें और ग्यारहवें श्लोकों में सदगुरु -- शरण को ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल दिया है जबकि १० वें में जीव की हरि भजन विमुखता का वर्णन प्रस्तुत है । आगे पीछे के श्लोक कवित्त में है और कवित में ही होने चाहिए । प्रस्तुत दोहे को बीच में रख देने से कवित्त का लय भंग भी होता है । छब्बीसवाँ दोहा भी ऐसे ही अस्थान पर है । पच्चीसवें और सत्ताइसवें श्लोकों में ज्ञान का महिमा गान है जबकि २६ वें में सर्वातीत परमात्मा का स्वानुभव करने का जीवात्मा को प्रबोध हैं । प्रस्तुत दोहा डॉ० त्रिपाठी के पास सुरक्षित संतप्रिया की ह०लि० पो० संख्या सात में भी नहीं है । इस दोहे के कवित्तों के बीच में आ जाने से

यहाँ कविता का लय भंग होता है। तिरासी, चौरासी, और सतासीवें श्लोकों में कवि ने अपनी 'ब्रह्मकुमारी' अथवा 'सहजावस्था' का निरूपण किया है जबकि ८५ वें ८६ वें दोहों में ज्ञान के लक्ष को प्राप्त करने की बात कही गई है। ये दोनों दोहे उपर्युक्त उल्लिखित पोथी संख्या सात में भी नहीं है। इस प्रकार दोहा संख्या १०, २६, ८५ और ८६ के रहने से प्रस्तुत प्रकरण में विषयांतर एवं लय भंग होने के कारण इन्हें निकाल लेने पर ही कवि की सूचनानुसार १०४ श्लोक, तथा कवित्त चोराशीचोज " और " अब कहुं पर ब्रह्म जीव का " वाले दोहों की संख्या क्रमश: १०५ और १०६ होगी। इन दोनों दोहों को " सर्वांगी प्रकरण " की कुल श्लोक संख्या में नहीं गिनना है। क्योंकि कविने " गुरु शिष्यसंवाद ", " अनुभवबिंदु " आदि अन्य रचनाओं में ग्रंथ की समाप्तिसूचक श्लोकों को ग्रंथ की कुल श्लोक संख्या में नहीं मिलाया है। यह व्यवस्था हस्तलिखित पोथी ७ के साथ भी पूर्ण मेल खाती है।

विषयवस्तु के प्रवाह में व्याघात

विषयवस्तु की धारा प्रवाहिता की दृष्टि से पूरी संतप्रिया का अध्ययन करने पर अनुभव होता है कि कई श्लोकों का स्थान परिवर्तन हो गया है ऐसा होने के कारण संतप्रिया का विषयप्रवाह खंडित होता है। " अक्षय-रस " में छपी संतप्रिया का ६२ वाँ दोहा " मालाए न पहनुं, न टीका बनाउं " वाले ८७ वें श्लोक के पश्चात् आना चाहिए। कवित्त संख्या ७६ से लेकर ८७ वें तक अखा ने ब्रह्मकुमारी अथवा अपनी " निराधार रहन " का जो वर्णन किया है, ऐसा प्रतीत होता है यह वर्णन ८७ वें श्लोक में अपूर्ण-सा रहता है।

४७

तिरानवें दोहा सत्तासीवें कवित्त के बाद रखने से उपर्युक्त अपूर्णता का परिहार हो जाता है । उन्नासी से लेकर सत्तासी तक के सभी कवित्तों की भावधारा को कवि ने अतीव लाघव के साथ प्रस्तुत एक ही दोहे में समाहित कर गागर में सागर भर देने वाली शैली का परिचय दिया है । तिरानवें दोहे को उसके स्थान पर से उपर ले जाने पर ६३ वें और ६४ वें श्लोकों के विषय वस्तु वर्णन एवं लय निर्वाह में भी प्रवाह माधुर्य की वृद्धि होती है ।

सर्वांगी प्रकरण, सर्वांगी साखी और रजब जी कृत " सर्वांगी "

अध्यात्म मार्ग के पथिक के लिए परम उपादेय ऐसे सर्व अंगों - विविध विषयों का वर्णन करनेवाली रचना को " सर्वांगी " कहा जा सकता है । अखा कृत " सर्वांगी प्रकरण " एवं " सर्वांगी साखी " दोनों मे अध्यात्म मार्ग के यात्री के लिए अपेक्षित, सद्गुरुसेवन, मनोमारण, माया - वासना तथा बाह्याडंबर एवं मिथ्याचारों का त्याग, नाना मत वाणी से दूर रहना, आत्म पहिचान, ब्रह्मज्ञान, जीवन्मुक्ति आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है । अर्थात् दोनों में विषय वस्तुगत साम्य है । किंतु " सर्वांगी प्रकरण " प्रधान रूप से कवित्तों में तथा " सर्वांगी साखी " साखियों में निर्मित होने के कारण दोनों में शिल्पगत वैभिन्य है । ऐसा भी प्रतीत नहीं होता कि पहले " सर्वांगी साखी " की रचना हुई हो और हेरफेर के पश्चात् " सर्वांग प्रकरण " लिखा गया हो । अर्थात दोनों रचनायें एक दूसरे से स्वतंत्र है । हो सकता है कि इन दोनों रचनाओं के नामकरण में अखा ने " संत रज्जब कृत सर्वांगी " का अनुसरण किया हो । क्योंकि दोनों समकालीन थे

और जैसा कि प्रथम अध्याय में यह निर्दिष्ट किया गया है कि अखा दादू शिष्य सुंदरदास के सम्पर्क में आये थे । हो सकता है कि सुंदरदास के गुरुबंधु रज्जबजी के संपर्क में भी वे आये हों और उनकी कृति के बारे में सुना हो । परंतु रज्जबजी कृत " सर्वांगी " एवं अखा की इन रचनाओं में उल्लेखनिय साम्य नहीं है ।

ब्रह्मलीला

परंपरा और प्रेरणा

अखा के पूर्वकालीन गुजरात के किसी संत कवि ने " ब्रह्मलीला " काव्य की रचना नहीं की है । यद्यपि लेखक को उसकी जयपुर यात्रा के दौरान में दादू पंथी जीवनदास के थांवा- दौसा " [जयपुर राज्य] में दादू पंथ के संतों की रचनाओं की संगृहीत हस्तलिखित पोथियों में से " संत मोहनदास मारोठ [सं० १६५५ -१६८० वि०] " द्वारा रचित एक " ब्रह्मलीला " काव्य मिला है तथा गुजराती संत कवि प्रीतमदास ने भी " ब्रह्मलीला " नामक लघु खंड काव्य की रचना की है । किंतु " मोहनदास मारोठ " हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश के होने के कारण तथा प्रीतमदास अखा के पश्चात् होने के कारण अखा को प्रस्तुत काव्य रूप के प्रथम ~~प्रथम~~ गुजराती रचयिता कहा जा सकता है । हो सकता है कि सगुण ब्रह्म के लीला-गायकों के कृष्ण-लीला, बाल-लीला, दाण-लीला आदि " लीला-काव्यों " के अनुकरण पर निर्गुण के उपासक ज्ञानमार्गी संतों ने इस रूप का प्रयोग किया हो ।

फलश्रुति में कवि ने अपना और अपनी कृति का नामोल्लेख स्पष्ट रूप से किया है[१]।

प्रस्तुत रचना आठ " चोखारा "[२] और छंद के ४० श्लोकों में निर्मित हुई है । प्रत्येक चोखारा के अंतिम पद का प्रत्येक छंद के पद से संबंध है :

चोखारा ४

ऐसो रमन चल्यो नित्य रासा, प्रकृति पुरूष को विविध विलासा ।
जैसे भींत रची चित्रशाला, नानारूप लखे ग्यों विशाला ।

छंद ४

विशाल दर्पन भीत कीनी । और स्वच्छ सत्य स्वामिनी
तारिके मध्य भांति भासी । ऐसी सत्य सुहावनी[३] ।।१।।

छंद ८

१. कहे अखो ए ब्रह्मलीला बडभागी जन गायगो
हरि हीरा अपने ह्वदयमें अनायास सों पायेगो ।। ५ ।।
- अक्षयरस पृ० ६०

२. ऐसे चो ~~अक्षरा~~ गुरुशिष्य संवाद में भी है । दृष्टव्य : अखानी वाणी गुरुशिष्यसंवाद खंड २ श्लोक ४४ से ४७५, ३६८

३. अक्षय रस पृ० ८८

सफल प्रकरण ग्रंथ

श्री नर्मदाशंकर महेता ने संतप्रिया को " प्रकरण " ग्रंथ कहा है[१]। किंतु प्रकरण ग्रंथ की परिभाषा जितनी सटीक ब्रह्मलीला पर बैठती है उतनी संतप्रिया पर नहीं । प्रकरण ग्रंथ की परिभाषा में कहा गया है कि " शास्त्र के किसी एकदेश से संबंधित तथा शास्त्र के अमुक प्रयोजन को सिद्ध करनेवाले लघु ग्रंथ को शास्त्रविद " प्रकरण " ग्रंथ कहते हैं[२]। जैसाकि तृतीय अध्याय में कवि की कृतियों के रचना क्रम पर विचार करते समय यह निर्दिष्ट किया गया है कि संतप्रिया केवल अध्यात्म साधना से संबंद्ध है अत: एतद्विषयक संबंधित विषय वैविध्य की अधिकता होने के कारण प्रकरण ग्रंथ के लिए अपेक्षित शास्त्रोक्त जो एकदेशीयता [Unity of Subject] होनी चाहिए वह उसमें नहीं है । अतएव प्रस्तुत कसौटी पर वह उतनी खरी नहीं उतर पाती कि जितनी ब्रह्मलीला उतरती है । ब्रह्मलीला का वर्ण्य विषय " जीव और जगत की उत्पत्ति, उनके पारस्परिक संबंध तथा ब्रह्मज्ञान होने पर जीव को जगत के समस्त व्यवहारों एवं कार्य कलापों का परब्रह्म की लीला के रूप में अनुभव होना"[३]-अत्यंत लघु है । इतना ही नहीं उसमें धारा प्रवाह भी है । अत: ब्रह्मलीला को सफल प्रकरण ग्रंथ कहा जा सकता है ।

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रस्तुत अध्याय में " अमृतकला रमैणी " और " एकलक्ष रमणी ", " साखियों का एक साल

---

१. अखो पृ० १८

२. वही० पृ० १८ शास्त्रैक देश संबद्धं शास्त्र कार्यान्तरे स्थितम् ।
आहु: प्रकरणं नाम शास्त्रविद विपश्चित: ॥
द्रष्टव्य:

३. अखायरस, ब्रह्मलीला, पृ ० ८७ से ९७

अंग " और " एकलक्षारमणी, " " कुंडलियों का रचना तंत्र, " " झूलना एवं भजनों का परिचय, पदों का वर्गीकरण, " " जकड़ियों की परंपरा और अखा की जकड़ियों का वैशिष्ट्य, " साखियों की संख्या " तथा " ब्रह्मलीला— एक सफल प्रकरण ग्रंथ " आदि के विषय में प्रथम वार और प्रमाणभूत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।